प्रतीक एवं सज्जा कला-एक विवेचन

नीरज कुमार पाण्डेय

भारतीय कला भारतीय जीवन का प्रतिबिम्ब है। यहां के धर्म, दर्शन और संस्कृति कला में स्पष्ट रूप से परिलक्षित हुए हैं। इस गुरुतर कार्य के लिए भारतीय कलाकारों ने कतिपय प्रतीकों का सहारा लिया है। विभिन्न विचारों, परम्पराओं, मान्यताओं और विश्वासों को इन प्रतीकों ने साकार कर दिया है। ये कला प्रतीक न केवल विचारों को अभिव्यक्त करते हैं अपितु शोभा,सुरक्षा एवं मांगलिक भावनाओं की वृद्धि भी करते हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य में प्रतीक शब्द सर्वप्रथम ऋग्वेद में मिलता है :

वि सानुना पृथिवी सस्र उर्व्वी पृथु प्रतीक मध्येधे अग्नि: ऋ0 7.36.1

प्रतीक सम्बन्धी मान्यताएं पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति में भी प्रचलित थी। मोनियर विलियम्स के शब्दकोष में प्रतीक शब्द के लिए अग्रेजी शब्द 'सिम्बल' दिया है। यह ग्रीक भाषा के सिम्बोलन से निकला है, जिसका अर्थ चिन्ह या संकेत होता है।

भाषा की उत्पत्ति से पहले विचारों का आदानप्रदान प्रतीकों के माध्यम से होता था। प्रतीकों का अकंन हड़प्पा काल से आज तक हो रहा है। प्राचीन भारतीय कला में मुख्य रूप से शुंग काल से लेकर कुषाण काल तक प्रतीकों की भरमार है। इस काल को 'सिम्बॉलिक टाइम' के नाम से भी जाना जाता है। यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि भारत में प्रतीक पूजा के माध्यम से ही मूर्ति पूजा का विकास हुआ था। ब्राह्मण, जैन एवं बौद्ध धर्म के देवी देवताओं की मूर्तियों का निर्माण एवं उनकी पूजा का विधान भारत में बाद में विकसित हुआ। इसके पहले उक्त सम्प्रदायों के भक्त अनुयायियों ने अपनी भक्ति भावना की पिपासा को शान्त करने के लिए कतिपय प्रतीकों की सर्जना कर ली थी एवं उनका पूजन अर्चन प्रारम्भ कर दिया था। भरहुत, साँची, मथुरा आदि से हमें इससे सम्बन्धित उत्कृष्ट नमूने प्राप्त होते हैं। तांत्रिक प्रयोगों में भी प्रतीक का महत्वपूर्ण स्थान है। कहीं-कहीं प्रतीकों का अंकन सामूहिक रूप से भी हुआ है, जिन्हें हम अष्टमांगलिक चिन्हों के रूप में जानते हैं।

प्रतीकों का वर्गीकरण-मोटे तौर पर भारतीय कलाप्रतीकों को कई कोटियों में गिनाया जा सकता है

(i) देवताओं से सम्बन्धित—सूर्य, चन्द्र, श्रीलक्ष्मी, वामन, शक्र, अग्नि आदि।

(ii) विचार एवं अवधारणाओं से सम्बन्धित—स्वस्तिक, त्रिविक्रम, ज्योतिर्लिंग, सप्तपदी आदि।

(iii) पशुपक्षी तथा विविध प्राणी प्रतीक—हंस, वृषभ, धेनु, सवत्साधेनु, महाश्व, श्वान, द्विशीर्षवृषभ, गज, व्याघ्र, मकर, कच्छप, मयूर, वाराह आदि।

(iv) पेड़ एवं पौधों से सम्बन्धित—कल्पवृक्ष, कमल, बोधिवृक्ष, कल्पलता, पद्म, श्रीवृक्ष आदि।

(v) विविध मांगलिक अभिव्यक्तियों से सम्बन्धित—वेदिका, पूर्णकलश, वसुधारा, इन्द्रयष्टि, वैजयन्ती, शंख, यक्ष-यक्षी आदि।

इस प्रकार प्रतीकों का स्वरूप न केवल धार्मिक रहा, अपितु अनेक लौकिक क्रियाकलाप भी उनके द्वारा अभिव्यक्त किए गये एवं भारतीय धर्म, साहित्य एवं कला के इतिहास में उनका स्थान व्यापक हो गया।

नीचे कुछ महत्वपूर्ण प्रतीकों पर विचार किया गया है ।

स्वस्तिक-स्वस्तिक प्राचीन भारतीय कला का वह अभिप्राय है जो समान रूप से विभिन्न युगों में, विभिन्न शैलियों में एवं विभिन्न धर्मो के अन्तर्गत मिलता है। 'स्वस्तिक' शब्द कल्याणवाची है। कनिंघम स्वस्ति शब्द को 'सु' तथा 'अस्ति' शब्दों से बना मानते हैं और इसका अर्थ 'कल्याणमय है' बताते हैं। स्वस्तिक को सूर्य का प्रतीक माना गया है। स्वस्तिक के दो प्रकार हैं अबाहु स्वस्तिक (+) और सबाहु स्वस्तिक (卐)। अबाहु स्वस्तिक सूर्य का प्रतीक है और सबाहु स्वस्तिक सूर्य की गति का। सबाहु स्वस्तिक के भी दो प्रकार बताये गये हैं—दक्षिणावर्त और वामावर्त। सिंहली ग्रंथ '**चन्द्रप्रदीपिका**' के अनुसार दाहिने बाहु वाले को स्वस्तिक और बाएं भाग वाला सौवास्तिक कहलाता है।

भारतीय कला में स्वस्तिक का अंकन सर्वप्रथम हड़प्पाकालीन मुहरों पर पाया जाता है। पिपरहवा से बुद्ध के अस्थिकलश के साथ कुछ सोने के आभूषण मिले हैं। इनमें एक पर स्वस्तिक बना हुआ है। आहत सिक्कों पर भी हमें स्वस्तिक का अंकन मिलता है।

भारतीय साहित्य में स्वस्तिक का उल्लेख अनेक जगहों पर हुआ है। जैन तथा बौद्ध साहित्य में स्वस्तिक को अष्टमांगलिक चिन्हों में से एक बताया गया है। जैन तीर्थङ्कर सुपार्श्वनाथ का लांछन स्वस्तिक था। बौद्ध ग्रंथ **ललितविस्तर** में सिद्धार्थ के घुंघराले केशविन्यास विभिन्न मांगलिक प्रतीकों के समान प्रतीत होते हैं, उनमें से स्वस्तिक भी एक है। महाभारत के द्रोणपर्व में कहा गया है कि राजदरबार में जाने से पहले युधिष्ठिर जिन मांगलिक द्रव्यों का दर्शन किया करते थे, उनमें स्वस्तिक प्रतीक भी थे।

वास्तुकला में भी स्वस्तिक का प्रयोग बहुतायत से हुआ है। **मानसार**, **वृहत्संहिता** एवं **समरांगणसूत्रधार** में स्वस्तिक-प्रासाद का वर्णन है। तंजावुर के वृहदीश्वर मंदिर की जालियों पर स्वस्तिक का अकंन मिलता है। महाबलीपुरम के रामानुजम् मण्डप के प्रवेशद्वार पर स्वस्तिक है। फतेहपुर सीकरी से भी स्वस्तिक का अंकन मिलता है।

उत्कीर्ण कला में भी स्वस्तिक का प्रयोग धड़ल्ले से हुआ है। मथुरा से प्राप्त जैन अयागपटों पर स्वस्तिक पाया जाता है। महापुरुष लक्षण में भी स्वस्तिक का प्रयोग हुआ है। पाटलिपुत्र से प्राप्त गोपाल नाम की मुद्रा पर स्वस्तिक का अंकन है। वाद्ययंत्रों एवं सर्पफण पर भी स्वस्तिक अंकित मिला है। इस प्रकार भारतीय कला में हमें स्वस्तिक सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है।

कुछ विचारक वामावर्त स्वस्तिक को स्त्री शक्ति और दक्षिणावर्त को पुरुषशक्ति का प्रतीक मानते हैं। स्वस्तिक का अकंन पश्चिमी एशिया, यूनान, इजिप्ट, मेक्सिको, इटली, स्वेडन, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, जर्मनी आदि देशों में किसी न किसी रूप में मिलता है। (सम्पादक)

श्रीवत्स–श्रीवत्स को लक्ष्मी का प्रतीक माना जाता है। यह धन, सुख, समृद्धि आदि का सूचक है। भारतीय कला में श्रीवत्स एक प्रतीक अथवा चिन्ह के रूप में प्रयुक्त हुआ है। प्रारम्भ में इसका प्रयोग मांगलिक चिन्ह के रूप में था, जो आगे चलकर महापुरुष लक्षण के रूप में विकसित हो गया। मांगलिक चिन्ह के रूप में इसकी लोकप्रियता भारतीय कला के विभिन्न माध्यमों से प्रकट होती है। भरहुत, साँची, सारनाथ, उदयगिरि खण्डगिरि, अमरावती तथा मथुरा के उत्कीर्ण शिल्प में इस प्रतीक के भिन्न भिन्न अंकन मिले हैं। प्राचीन भारतीय सिक्कों तथा मृण्मुद्राओं पर भी श्रीवत्स का अंकन बहुतायत से मिलता है। इसके अतिरिक्त मथुरा से प्राप्त अयागपटों पर, जैन तीर्थङ्करों, बुद्धपदों तथा विष्णु आदि देवताओं के वक्षस्थलों पर श्रीवत्स उत्कीर्ण किया गया है। वास्तुकला में भी श्रीवत्स का अंकन हुआ है। भारतीय कला में इस प्रतीक की परंपरा अत्यन्त प्राचीन है।

त्रिरत्न, नन्द्यावर्त या नन्दीपद–त्रिरत्न प्रतीक बौद्ध, जैन एवं ब्राह्मण विचारधारा में सम्यक् रूप से समाहित किया गया है। बौद्ध विचारधारा में इसे बुद्ध, धर्म और संघ का संगठित रूप माना गया है। जैन धर्म में इसे नवसंख्यक निधियों का प्रतीक माना गया है। ब्राह्मण विचारधारा में भी तीन संख्याओं का महत्व प्राचीन काल से ही पाया जाता है। त्रिरत्न संभवत: पहले नन्दीपद से अभिन्न था। नन्दीपद का शाब्दिक अर्थ है उल्लास का स्थान। भारतीय संस्कृति में जीवन की सम्पूर्ण समृद्धि और आनन्द 'नन्दी' से संबन्धित माने जाते थे। अत: वृषभपाद को कला में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। नन्दीपद और नन्द्यावर्त एक ही प्रतीक के दो नाम हैं। नन्दीपद का अंकन आहत सिक्कों, जनपदीय सिक्कों, साँची, मथुरा आदि से प्राप्त आयागपट्ट आदि से प्राप्त होता है।

पञ्चांगुल–कला प्रतीको में पञ्चांगुल की भी गणना की जाती है। दाहिने हाथ की पांचों अंगुलियों की छाप या पंजे को पञ्चांगुल चिन्ह कहते हैं। सदियों पुराने होने पर भी जिन मांगलिक प्रतीकों की परम्परा आज भी प्रचलित है उनमें पञ्चांगुल भी सम्मिलित है। पुत्रजन्म, विवाह, गृहप्रवेश आदि धार्मिक अनुष्ठानों में पञ्चांगुल का प्रयोग आज भी प्रचलित है। भारतीय जीवन में पञ्चांगुल के प्रचलन की पुष्टि कादम्बरी, हर्षचरित एवं मृच्छकटिकम् आदि ग्रन्थों से, मथुरा तथा भरहुत के उत्कीर्ण शिल्प से, सोंख (मथुरा) से प्राप्त मिट्टी के पंजे से तथा मिर्जापुर , भीमवेटका आदि स्थानों से प्राप्त प्रागैतिहासिक शैलचित्रों से होती है। सती स्टोन पर भी सूर्य चन्द्र के साथ पञ्चांगुल मिलता है।

मीनमिथुन–मीन मिथुन को अष्टमांगलिक चिन्हों में से एक माना जाता है। शोभा, सौभाग्य एवं सर्जन के लिए मीन की महत्ता स्वीकार की गई है। जैन ग्रन्थों में इसकी व्यापक चर्चा की गई है। इसे कामदेव का प्रतीक माना गया है। भारतीय कला में इसका अंकन साँची, मथुरा से प्राप्त अयागपट्ट पर, आहत सिक्कों एवं आभूषणों पर, मीनध्वज पर, देवगढ़, खजुराहो आदि से मिलता है। मीन को शुभ शकुन भी माना गया है। इसमें सन्तति सुख का कल्याणकारी भाव समाहित था।

सवत्साधेनु–सवत्साधेनु को भी मांगलिक चिन्ह के रूप में स्वीकार किया गया है। मत्स्यपुराण में गाय को लक्ष्मी के समान माना गया है। प्राचीन काल से ही गोधन हमारे सुख और समृद्धि का प्रतीक माना गया है। रघुवंश में जब

राजा दिलीप नन्दिनी गाय को जंगल से लेकर आश्रम के द्वार पर पहुँचते हैं और उसकी पूजा करते हुए कहते हैं कि नन्दिनी के सींगों का जो मध्य भाग है, वही हमारी समृद्धि का द्वार है। **सुश्रुतसंहिता सूत्रस्थान** में अनेक शुभ दृश्यों का उल्लेख किया गया है, उसमें सवत्साधेनु भी एक है।

स्त्रीपुत्रिणी सवत्सागौर्वर्द्धमानमलंकृता
कन्या मत्स्याः फलं चामं स्वस्तिकां मोदका दधि।। **29/28**

कमल–कमल मांगलिक चिन्हों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसे पद्म, पुण्डरीक, पुष्कर आदि नामों से अभिहित किया जाता है। यह प्राणतत्व और जागृति का प्रतीक है। विष्णु की नाभि से उत्पन्न होने के कारण यह पृथ्वी का प्रतीक है। भारतीय कला में कमल का अंकन मथुरा, साँची, भरहुत आदि के शिल्पों में मिलता है। स्तूप की वेदिका पद्मवर वेदिका कहलाती थी। कमल को प्रकाश और ज्ञान का प्रतीक माना गया है।

पूर्णकलश–कलश के इस प्रतीक को मंगलकलश अथवा भद्रकलश भी कहा गया है। कलश मांगलिकता का बोध कराता है और हर्ष एवं सृजन का प्रतीक है। पूर्णकलश में भरा जल जीवन का रस है। वेदों में इसे सोम, अमृत तथा घृत से परिपूर्ण कहा गया है। पूर्ण कलश की तुलना सुन्दर स्त्री से भी की गई है।

कल्पवृक्ष–कल्पवृक्ष समुद्र मंथन से निकला। इसे समस्त इच्छाओं को पूर्ण करने वाला कहा गया है। इसी कारण इसे इच्छापूर्ति वृक्ष भी कहते हैं। इसे कल्पना वृक्ष, संतुष्टि वृक्ष, कल्पलता आदि के नामों से भी जाना जाता है। भारतीय कला में इसका अंकन अनेक स्थानों पर हुआ है।

अभिलेखों में प्रतीक का अंकन–अभिलेखों पर भी प्रतीकों का अंकन हमें पर्याप्त मात्रा में मिलता है। चूँकि अभिलेख मांगलिक कार्यों से सम्बन्धित होते थे, इसलिए उन पर मांगलिक प्रतीकों का अंकन मिलता है। अशोक के जौगढ़ शिलालेख में स्वस्तिक का अंकन तीन स्थानों पर हुआ है। मथुरा से प्राप्त शोडाष के अभिलेख में श्रीवत्स और नन्दी का बहुत ही सुन्दर अंकन हुआ है। यशोधर्मन के मन्दसौर अभिलेख में पञ्चांगुल का वर्णन हुआ है।

सज्जा कला

सुन्दरता के प्रति लगाव मानव में स्वाभाविक रूप से होती है। यह सौन्दर्यात्मक प्रवृत्ति व्यक्ति विशेष को सुन्दरता के प्रति सृजनात्मक गतिविधियों हेतु प्रेरित करती है। नि:संदेह आभूषण व्यक्तिगत सौंदर्य का एक प्रमुख माध्यम रहा है और संभवत: यही कारण है कि आभूषण निर्माण कला मानव सभ्यता के विकास से जुड़ी रही है। प्राचीन भारत के पशुपालन समाज में आभूषण को चार प्रमुख निधियों में से एक माना गया है।

भारत में आभूषण शिल्प के विकास से सम्बन्धित अन्य कारण भी रहे हैं। विभिन्न मूल्यवान पत्थरों एवं धातुओं में औषधि सम्बन्धी गुण भी पाये गये हैं,जो मानव स्वास्थ्य के लिए उपयोगी होते हैं। इसी प्रकार भारत में प्रचलित यह ज्योतिषीय विश्वास कि प्रत्येक ग्रह का अपना एक रत्न होता है, जिसे धारण करने से सम्बन्धित ग्रह

अनुकूल होता है, ने समाज में रत्न एवं आभूषणों को बढ़ावा दिया। शैलीगत विशेषता के आधार पर आभूषणों को विभिन्न वर्गों में रखा गया है।

(i) **मंदिर के आभूषण**–चूँकि उत्तर भारत में मन्दिरों पर मुस्लिम आक्रमणों द्वारा आभूषणों को लूट लिया गया, किन्तु दक्षिण भारत के मंदिरों में आभूषण सुरक्षित रह गये। मंदिर के आभूषणों का वर्गीकरण देवता के आधार पर होता था। शैव और वैष्णव देवताओं के लिए भिन्न भिन्न वस्त्र एवं आभूषण होते थे। विष्णु के हृदय पर कौस्तुभ मणि, कान में सांख्य और योग के कुण्डल आदि होते थे। कृष्ण के आभूषण में मोरमुकुट और वैजयन्ती माला होती थी। शिव आभूषणों में चन्द्रमा, सांप, वीरपट्ट आदि होते थे। मैसूर के राजा कृष्ण वाडियार का आभूषणों का एक कारखाना था जिसमें केवल देवताओं के आभूषण बनते थे। राजाओं द्वारा मंदिर में आभूषण दानस्वरूप दिए जाते थे। **तालपुस्तिका** नामक ग्रन्थ में मन्दिर के आभूषणों की सुरक्षा के सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा की गई है।

(ii) **उत्तर भारतीय आभूषण**–उत्तर भारतीय आभूषण सर्वप्रथम हमें सिन्धुघाटी से मिलते हैं। आभूषण बनाने के लिए सोना और चाँदी अफगानिस्तान से और तांबा राजस्थान से आता था। सिन्धुघाटी के अधिकांश आभूषण मनकों के मिलते हैं। मौर्य काल में कौटिल्य के अर्थशास्त्र से हमें गहनों की जानकारी मिलती है। उस समय ग्रीको रोमन गहने प्रचलन में थे जो प्राय: सोने के थे और साँचे में ढाल कर बनते थे। मौर्य काल में सोना पार्थिया से आता था।

(iii) **मुगल आभूषण**–मुगल आभूषणों पर फारस का प्रभाव था। चूँकि मुगल शासकों के पास रत्नों का अकूत भण्डार था, इसलिए उनके अधिकतर गहने रत्नजड़ित होते थे। शाहजहां रत्नों का जानकार एवं गहनों का डिजाइनर भी था। मुगल काल में प्रसिद्ध कला कुन्दन का काम था। मुगल शासकों ने आभूषणों पर पन्ना का भी प्रयोग किया। मुगल गहनों पर प्राकृतिक चित्रण होता था। औरंगजेब ने सोने के गहनों का विरोध किया। उसके समय से जेड के आभूषण प्रयोग में लाये जाने लगे।

जेड–जेड एक कम बहुमूल्य और कड़ा पत्थर है। इसका दूसरा नाम यशब और पाजहर है। जेड कासगर, भारकंद, खोतान आदि प्रदेशों में मिलता है। जेड को क्वार्टज पत्थर से तराशा जाता था। भारत में जेड कला दूसरी सदी ई.पू. से है। ह्वेनसांग को कश्मीर के निकट एक मठ में जेड के बने बुद्धपद देखने को मिले। **14**वीं सदी के ग्रंथ **खवासुलजवाहर** में जेड की तकनीक की चर्चा की गई है। मुगल दरबार में शराब के प्याले प्राय: जेड के बने होते थे। शाहजहां को सफेद जेड बहुत रुचिकर था। उसके समय जेड का बहुत बारीक काम होता था। **18**वीं सदी के चीनी राजा क्यो लुंग के संग्रह से बहुत से ऐसे जेड के बने पात्र मिले हैं जिन पर 'इन्तुस्तान' लिखा हुआ है। इन पात्रों पर भारतीय प्रतीक भी अंकित है।

बीदरी कला–आन्ध्रप्रदेश के बीदर नामक स्थान से सम्बन्धित होने के कारण इस कला का नाम 'बीदरी' पड़ा। इस कला की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि भारत के अतिरिक्त कहीं नहीं पाया जाता है। इस कला में एक

विशेष रूप से तैयार धातु पर सोना या चांदी के तार से तारकशी (इन्ले) का काम होता था। धातु तांबा, जस्ता और सीसा मिलाकर तैयार किया जाता था। मुगलों से पहले इस कला का उल्लेख नहीं मिलता । सर्वप्रथम **चतरगुलसन** (1759) नामक किताब में इस कला का उल्लेख मिलता है। बीदरी कला की अधिकतर वस्तुएं रोजमर्रा की होती थी जैसे— कटोरा, पीकदान, हुक्के का नीचे का भाग आदि।

मुगल ग्लास-वैसे तो दूसरी सदी ई.पू. से ही भारत में सीसे से बनी वस्तुओं का प्रचलन था, किन्तु मुगलकाल में इसका अधिक प्रचलन हुआ। **आइने-अकबरी** में शीशे के विभिन्न प्रकारों की चर्चा की गई है। भारत में शीशे के उत्पादन केन्द्र मैसूर के निकट चेन्नपटनम् और गुजरात में कपड़बंज महत्वपूर्ण थे। मुगलकाल में कांच की बनी वस्तुओं में इत्रदान, हुक्का, पात्र आदि थे। सीसे पर कटिंग का काम भी होता था और उस पर सोने का पानी चढ़ाकर चित्र भी बनाये जाते थे।

भारतीय कला में प्रतीकों एवं सज्जा कला का महत्वपूर्ण स्थान है। कला में स्थूल जगत् का अंकन एक सामान्य कार्य है, किन्तु सूक्ष्म और निराकार विचारों, विश्वासों, मान्यताओं को दर्शक के समक्ष साकार बनाना अत्यन्त दुरूह और महत्वपूर्ण कार्य है और इस कार्य को भारतीय शिल्पी ने प्रतीकों की उद्भावना करके सफलता पूर्वक सम्पन्न किया है। भारतीय सज्जा कला एवं इन प्रतीकों में अन्तर्निहित मर्म को समझे बिना भारतीय कला में प्रतिबिम्बित जीवन और संस्कृति को ठीक से समझ पाना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है।

सन्दर्भ

1 ज्ञान प्रवाह द्वारा आयोजित 'प्रतीक एवं सज्जा कला' से सम्बन्धित गहन अध्ययन शिविर में डा0 ए.एल. श्रीवास्तव, डा0 एम.एल. निगम एवं प्रो0 आर.सी. शर्मा द्वारा नवम्बर 2000 में दिये गए व्याख्यानों पर आधारित।

2 सुप्रतीका—प्रभाशंकर पाण्डेय

3 भारतीय कला प्रतीक—ए.एल. श्रीवास्तव ।